भारतीय राजनीति का मैला आंचल

प्रेम सिंह

भारतीय राजनीति का अधिकांश आंचल सांप्रदायिकता से मैला हो चुका है। देश के मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य को देख कर लगता है कि जिस तरह से राजनीतिक और बौद्धिक ईलीट के बीच नवउदारवाद पर सर्वसम्मति है, उसी तरह सांप्रदायिक राजनीति अथवा राजनीतिक सांप्रदायिकता पर भी सर्वसम्मति बन चुकी है। धर्मनिरपेक्ष कही जाने वाली राजनीतिक पार्टियां सांप्रदायिक भाजपा की होड़ में सांप्रदायिकता का सहारा लेती हैं, तो यह ठीक ही कहा जाता कि सांप्रदायिकता के पिच पर वे भाजपा को नहीं हरा सकतीं। हालांकि ऐसा कहते वक्त यह चिंता नहीं व्यक्त की जाती कि धर्मनिरपेक्षता का दावा करने वाली पार्टियों द्वारा सांप्रदायिकता का सहारा लेने से देश की पूरी राजनीति सांप्रदायिक होती जा रही है। इस मामले में दूसरी बात यह देखने में आती है कि धर्मनिरपेक्ष नेता और विद्वान आरएसएस/भाजपा के हिंदुत्व के मुकाबले हिंदू धर्म की दुहाई देते पाए जाते हैं। गोया हिंदू धर्म के नाम पर राजनीति करना सांप्रदायिक आचरण नहीं है!

संविधान के परिप्रेक्ष्य से सांप्रदायिकता की सीधी परिभाषा है। धर्म का राजनीतिक सत्ता हथियाने के लिए इस्तेमाल सांप्रदायिकता है। धर्म का राजनीतिक इस्तेमाल हिंदुत्व के नाम पर किया जाए, नरम हिंदुत्व के नाम पर किया जाए या हिंदू धर्म के नाम पर किया जाए या अल्पसंख्यकों के वोट हासिल करने के लिए किया जाए, सांप्रदायिक राजनीति की कोटि में आता है। अल्पसंख्यक नेताओं द्वारा उनके धर्मों के नाम पर की जाने वाली राजनीति भी सांप्रदायिक राजनीति है। राजनीति की मुख्यधारा में सक्रिय शिरोमणि अकाली दल, इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग, शिवसेना, ऑल इंडिया मजलिसे इत्तहादुल मुसलमीन आदि पार्टियों/नेताओं की राजनीति सीधे-सीधे सांप्रदायिक राजनीति है। अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता बहुसंख्यक सांप्रदायिकता से कम खतरनाक है, ऐसा कहने से सांप्रदायिक राजनीति के फैलाव की सच्चाई निरस्त नहीं होती।

मण्डल बनाम कमण्डल की बहस में जातिवादी राजनीति को सांप्रदायिक राजनीति की काट माना गया था। अब तक यह समझ आ जाना चाहिए कि जातिवाद की राजनीति अंतत: धर्म से ही जुड़ी होती है। अर्थात वह सांप्रदायिक राजनीति का ही एक रूप है। नेताओं द्वारा राजनीतिक अभियान में हाथी को गणेश, ब्रह्मा-विष्णु-महेश बताना, परशुराम का फरसा और कृष्ण का सुदर्शन चक्र लहराना जैसे कार्यकलाप इसके सीधे प्रमाण हैं। सांप्रदायिक राजनीति की बिसात पर राहुल गांधी जब अपनी जाति/कुल बताने के लिए जनेऊ का प्रदर्शन करते हैं, अथवा प्रियंका गांधी रैलियों में मस्तक पर चंदन पोतती हैं, तो अगड़ा-पिछड़ा विभेद निरर्थक हो जाता है। सांप्रदायिक राजनीति पर सर्वानुमति का ही नतीजा है कि पिछड़े प्रधानमंत्री और दलित राष्ट्रपति की 'हिंदू-राष्ट्र' के नायक के रूप में सहज स्वीकृति है।

ध्यान देने की जरूरत है कि भारत के प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियों द्वारा स्थापित एवं पोषित आम आदमी पार्टी (आप) सांप्रदायिक राजनीति को आरएसएस/भाजपा से आगे बढ़कर गहरा और दीर्घजीवी बनाने में लगी है। सांप्रदायिक राजनीति के रास्ते पर अन्य प्रचलित युक्तियों के साथ आप के कुछ नूतन प्रयोग देखे जा सकते हैं। मसलन, चुनावी जीत पर और पार्टी कार्यालयों में मंत्रोच्चार के साथ हवन का आयोजन, बड़ी संख्या में होने वाले धार्मिक प्रवचनों में पार्टी की सीधे हिस्सेदारी, मोहल्लों

में 'सुंदर कांड' के कार्यक्रम आयोजित करने का सरकारी फैसला, सरकारी खर्च पर वरिष्ठ नागरिकों को तीर्थाटन कराने की सुविधा, विधानसभा जैसी जगह पर भी रामलीला आदि धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन, अयोध्या में बनने वाले भव्य राममंदिर की प्रतिकृति (रेप्लिका) को सरकार के विभिन्न कार्यक्रमों/अभियानों का हिस्सा बनाना आदि-आदि।

सत्ता के खेल में शामिल भाजपा समेत सभी पार्टियां का किसी न किसी विचारधारा को मानने का दावा करती हैं। आप घोषित रूप से राजनीति में विचारधारा का निषेध करने वाली पार्टी है। अन्य पार्टियों ने नवउदारवाद के प्रभाव में धीरे-धीरे संविधान की विचारधारा का त्याग किया है। आप चूंकि सीधे नवउदारवाद की कोख उत्पन्न हुई है, इसलिए शुरू से ही संविधान की विचारधारा के प्रति नक्कू रवैया रखती है। शुरू में प्रभात पटनायक और एसपी शुक्ला जैस विद्वानों ने आप के संविधान-विरोधी रुख की आलोचना की थी। लेकिन वह सिलसिला आगे नहीं बढ़ा। धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील विद्वानों, खास कर कम्युनिस्टों, की तरफ से आप सुप्रीमो को पूरी छूट है - वह बहुसंख्यक सांप्रदायिकता का कुशल प्रबंधन करते हुए, पंजाब में रेडिकल तत्वों के साथ मीजान बिठा सकता है; देश की सबसे बड़ी अकलियत को मुट्ठी में रख सकता है; जब चाहे आरएसएस/भाजपा के साथ और जब चाहे अन्य किसी पार्टी के साथ संबंध बना और बिगाड़ सकता है।

पारिवारिक नेतृत्व के जिद्दीपन की बदौलत कांग्रेस का तेजी से क्षरण जारी है। आप कांग्रेस की जगह लेने की सुनियोजित रणनीति पर चल रही है। ऐसा होने पर देश की केंद्रीय राजनीति दक्षिणपंथ बनाम दक्षिणपंथ हो जाएगी; और नवउदारवादी नीतियों को निर्विघ्न गति मिलेगी। दुनिया में होने वाले दक्षिणपंथी उभार से इस परिघटना को बल मिलेगा। इस तरह निगम भारत और हिंदू-राष्ट्र के मिश्रण से 'नया भारत' अंततः तैयार हो जाएगा। आरएसएस/भाजपा पर दिन-रात हल्ला बोलने वाले यह सच्चाई मानने के लिए तैयार ही नहीं हैं कि नवउदारवाद और सांप्रदायिक फासीवाद एक-दूसरे के कीटाणुओं पर पलते हैं।

बहरहाल, सांप्रदायिक राजनीति के फैलाव के हमारे राष्ट्रीय जीवन पर कई प्रभाव स्पष्ट हैं: एक, सांप्रदायिक राजनीति लोकतंत्र के रथ पर चढ़ कर विचरण करती है। समझा जा सकता है कि सांप्रदायिकता का मैला ढोते हुए भारतीय लोकतंत्र का चेहरा बुरी तरह विद्रूप हो गया है। दो, संवैधानिक संस्थाएं मसलन चुनाव आयोग, सुप्रीम कोर्ट, कार्यपालिका आदि सांप्रदायिक राजनीति के खिलाफ वास्तव में कारगर कदम नहीं उठा सकती हैं। यानी सांप्रदायिक राजनीति पर सर्वसम्मति होने के बाद संवैधानिक संस्थाओं से शिकायतों के निस्तारण की उम्मीद करना अपने को धोखे में रखना है। तीन, नफरती अभियान के विभिन्न रूप - भीड़ हत्याएं, नफरत भरे बयान, सुल्ली डील्स-बुल्ली बाई एप्पस, हिंदू ट्राड आदि - प्राथमिक रूप से देश में बेरोक चलने वाली सांप्रदायिक राजनीति की देन हैं। चार, सांप्रदायिक राजनीति के प्रभाव से नेता ईश्वर और देवी-देवताओं के अवतार और रक्षक एक साथ हो गए हैं। पांच, धर्म अपने सर्वोत्तम रूप में हमेशा से दर्शन, कला, करुणा और सामाजिक उल्लास का अक्षय स्रोत रहा है। सांप्रदायिक राजनीति धर्म के उस स्वरूप को निर्लज्जता से विनष्ट करती जा रही है।

(*लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फ़ेलो हैं*)